नियमसार, १४६ गाथा। उसकी **टीका : यहाँ वास्तव में साक्षात् स्ववश परमजिनयोगीश्वर का स्वरूप कहा है। जो (श्रमण) निरुपराग निरंजन...** आहाहा! अन्दर तत्त्व की बात है न? बाहर से तो कुछ कर नहीं सकता। एक वस्त्र पहनना या ओढ़ना, वह आत्मा नहीं कर सकता। आहाहा! वस्त्र ओढ़ना या पहनना या ऐसा (होता है), वह जड़ की क्रिया आत्मा कर नहीं सकता। आहाहा! अब उससे पार अब यहाँ तो वापस (बात है)। विकल्प है, वह भी आत्मा का कर्तव्य नहीं है। आवश्यक है न? अवश्य कर्तव्य है उसका। क्या?—कि

निरुपराग निरंजन स्वभाववाला होने के कारण... आहाहा! जिसमें जरा भी राग नहीं। शुभ और अशुभराग। क्रिया तो नहीं। यह हिलने की-चलने की, कपड़े पहनने की, ओढ़ने की। यह कपड़ा पहने, तब रहे वैसे रहता होगा? आहाहा! गजब बात, भाई! यह कर नहीं सकता, कहते हैं। वस्त्र को ऐसे पक्का बाँधना तो रहे, वह आत्मा की क्रिया ही नहीं है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! यहाँ तो राग की क्रिया भी इसकी नहीं है। जरा राग हो, वह क्रिया इसकी नहीं है। आहाहा! निरुपराग-जिसमें राग ही नहीं। भगवान चैतन्य

ध्रुव नित्यानन्द प्रभु... आहाहा! जिसकी दृष्टि में रागरहित निरुपराग चीज़ दृष्टि में पड़ी है, उसकी यह बात चलती है। वह स्ववश है। बाकी सब परवश है। आहाहा!

निरुपराग निरंजन... जिसमें कोई अंजन नहीं, मैल नहीं। भगवान आत्मतत्त्व निर्मलानन्द प्रभु, जिसमें राग नहीं, मैल नहीं। **निरंजन स्वभाववाला होने के कारण...** आहाहा! वह तो मलिन और मैल और राग के अभाववाला होने के कारण। **औदयिकादि परभावों के समुदाय को परित्याग कर,...** आहाहा! बाहर की क्रिया शरीर की और वस्त्र की और कपड़े की, पीने की और पकाने की तथा खाने की, वह सब क्रिया तो जड़ की है। आहाहा! परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु है, उसके चार भाव उसमें नहीं हैं। पर्याय में उसके भाव। उदयभाव, उपशमभाव, क्षयोपशमभाव, क्षायिकभाव चार पर्याय जो है, (वह उसमें नहीं है)। आहाहा! कहाँ जीव को पहुँचना?

निरुपराग निरंजन स्वभाववाला होने के कारण औदयिकादि परभावों के... ये परभाव हैं। आहाहा! (आत्मा) स्वरूप प्रत्यक्ष, स्वभाव से प्रत्यक्ष इसके अतिरिक्त के चार भाव वे परभाव हैं। आहाहा! राग तो परभाव है, शुभराग और अशुभराग, (तो परभाव है) परन्तु उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव भी परभाव है। क्योंकि वह पर्याय है, वह त्रिकाली चीज़ नहीं है। आहाहा! ऐसी कठिन बात है। **औदयिकादि परभावों के...** परभाव। जिसमें क्षायिकभाव नहीं। आहाहा! परमस्वभावभाव, ध्रुवभाव, नित्यभाव, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु, उसमें क्षायिकभाव की पर्याय का भी अभाव है। उदय में राग का तो अभाव है, उपशमभाव का तो अभाव है। राग को दबा देना, वह भी आत्मा में नहीं है। आहाहा! तथा राग का क्षय करना, वह भी आत्मा में नहीं है तथा ज्ञानावरणीय आदि का क्षयोपशम करना, और इससे क्षयोपशमभाव होता है, वह आत्मा में नहीं है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! वस्तु सच्चिदानन्द प्रभु पूर्णानन्द का सागर नाथ, जिसे क्षायिकभाव भी स्पर्श नहीं करता। आहाहा! उसे भी यहाँ परभाव कहा है, तो राग तो परभाव है। शरीर, वाणी, मन, कपड़ा-बपड़ा, धूल, वह सब तो पर है। आहाहा!

जिसे कल्याण करना है, उसे **औदयिकादि परभावों के समुदाय को...** परित्याग करना चाहिए। आहाहा! पर्याय का लक्ष्य छोड़ देना चाहिए, ऐसा कहते हैं। वस्तु द्रव्य और पर्याय दो स्वरूप है परन्तु पर्याय का त्याग करना चाहिए तो दृष्टि द्रव्य पर जाएगी। आहाहा!

बाहर की क्रिया की तो बात ही कहाँ रह गयी। यह टोपी-बोपी ठीक से पहनना और... वह क्रिया आत्मा की है ही नहीं। यह भाव—राग तो (इसका) नहीं परन्तु उपशम, क्षयोपशमभाव भी इसका नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो नियमसार है। आहाहा!

इन **औदयिकादि परभावों के समुदाय को...** समुदाय अर्थात् चार भाव हुए न? उन्हें **परित्याग कर,...** त्याग कर नहीं कहा। परित्याग कर - समस्त प्रकार से उनका लक्ष्य छोड़कर.. आहाहा! अकेला ध्रुव चैतन्य त्रिकाली अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान से सर्वांग पूर्ण भरपूर प्रभु, इसके अतिरिक्त चार भाव का परित्याग—सर्व प्रकार से लक्ष्य छोड़ दे। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! चार भाव के समुदाय का परित्याग। समुदाय अर्थात् यह समुदाय, हों! वह बाहर का समुदाय, वह नहीं। आहाहा! आत्मद्रव्य में पर्याय के जो चार प्रकार—उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक—इन्हें यहाँ समुदाय कहा है। उस समुदाय को परित्याग कर। आहाहा! **निज कारणपरमात्मा को—** निज कारणपरमात्मा। जो स्वरूप से प्रत्यक्ष है, स्वभाव से प्रत्यक्ष है। स्वरूप प्रत्यक्ष होने के योग्य ही है। आहाहा! **निज कारणपरमात्मा को—** निज कारणपरमात्मा। त्रिलोकनाथ तीर्थंकर भी नहीं। वे भी परद्रव्य हैं। जहाँ चार भाव को परद्रव्य कहा। पहले आ गया है। क्षायिकभाव आत्मा में नहीं है। पहले आ गया है। इस नियमसार में। उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव आत्मा में नहीं है। आहाहा! तो यह तुम्हारे हीरा-माणिक कहाँ थे? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि वस्त्र को स्पर्श नहीं करता, इन हीरा-माणिक को स्पर्श नहीं करता, प्रभु! यह बात बैठना... आहाहा! अपनी चीज़ के अतिरिक्त परचीज़ को तो स्पर्श भी नहीं करता, तो फिर वह इसकी क्रिया कर सके, यह बात तो है नहीं, परन्तु इसमें होनेवाले चार भाव, आहाहा! इसकी पर्याय में होनेवाले चार भाव... आहाहा! उन्हें परित्याग कर—समस्त प्रकार से लक्ष्य छोड़कर। आहाहा! यह पर्याय का अर्थात् अवस्था का। चार प्रकार की जो अवस्था है, उसे सर्वथा प्रकार छोड़कर कारणपरमात्मा को, वह कारणपरमात्मा त्रिकाली सच्चिदानन्द प्रभु है। आहाहा! अन्तर आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ पूर्णानन्द से भरपूर है।

कि जो (कारणपरमात्मा) काया, इन्द्रिय और वाणी को अगोचर है,... आहाहा! भगवान आत्मा काया की क्रिया से अगम्य है। आहाहा! इन्द्रिय की क्रिया से अगम्य है।

द्रव्य इन्द्रिय और भावेन्द्रिय से भी अगम्य है। आहाहा! जड़ इन्द्रिय और भाव इन्द्रिय जो क्षयोपशम है, उसका जिसमें अभाव है, उसे और वाणी के अगोचर है, वाणी के अगम्य है। आहाहा!

एक ओर ऐसा कहना कि मोक्ष का कारण सुबोध है। भाई! आता है न? और सुबोध, वह सुशास्त्र से होता है और सुशास्त्र आप्त पुरुष से होता है। इसलिए... आहाहा! धर्मी को धर्मी जीव का, जिससे मिला, उसका उपकार नहीं छोड़ना, ऐसा पहले आया था। पाँचवीं गाथा, पाँचवीं है न?

मुमुक्षु : छठी गाथा सोलहवाँ पृष्ठ।

पूज्य गुरुदेवश्री : कितना? सोलहवाँ पृष्ठ, ऐसा न? आहाहा!

इष्ट पद की सिद्धि का उपाय सुबोध है... आहाहा! सम्यग्ज्ञान के बिना इष्ट फल प्राप्त नहीं होता। सच्चे ज्ञान के बिना, क्रियाकाण्ड द्वारा कुछ करके नहीं मिलता। उस **इष्ट पद की सिद्धि का उपाय सुबोध है (अर्थात् मुक्ति की प्राप्ति का उपाय सम्यग्ज्ञान है),...** यह इसका अर्थ किया। **सुबोध सुशास्त्र से होता है,...** वह सम्यग्ज्ञान सुशास्त्र से होता है। **सुशास्त्र की उत्पत्ति आप्त से होती है;...** आहाहा! चौथे गुणस्थान में भी आप्त लिया है। दीपचन्दजी ने। अध्यात्म पंच संग्रह में (ऐसा लिया है)। **इसलिए उनके प्रसाद के कारण...** आहाहा! पर के कारण कुछ नहीं होता, तब यहाँ उनके प्रसाद के कारण, ऐसा कहा है। आहाहा! व्यवहार का वाक्य है। सद्भूतव्यवहार का।

उनके प्रसाद के कारण आप्त पुरुष बुधजनों द्वारा... धर्मात्मा आप्त पुरुष है, वह पूजनेयोग्य है। **(अर्थात् मुक्ति सर्वज्ञदेव की कृपा का फल होने से...)** यह प्रसाद कहा न? आहाहा! एक ओर कहा कि मुक्ति को किसी की अपेक्षा (नहीं है), क्षायिकभाव की भी नहीं। आहाहा! **(अर्थात् मुक्ति सर्वज्ञदेव की कृपा का फल होने से सर्वज्ञदेव ज्ञानियों द्वारा पूजनीय हैं), क्योंकि किये हुए उपकार को साधु पुरुष (सज्जन) भूलते नहीं हैं।** आहाहा! ऊपर है न? **'न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरंति।'** आहाहा! एक ओर उपकार कहना और एक ओर कहना कि क्षायिकभाव आत्मा में नहीं है। आहाहा! निमित्त का ज्ञान कराते हैं। व्यवहार है न? व्यवहार व्यवहार से वन्दनीय है न? व्यवहार से व्यवहार वन्दनीय न हो तो भगवान को वन्दन करना, वह भी नहीं रहता। आहाहा! परन्तु निश्चय

में तो अन्तर भगवान कारणपरमात्मा... आहाहा! है न? यहाँ तो यह आया न, उपकार भूलते नहीं। यहाँ आया। १४६ आया न?

निज कारणपरमात्मा को—कि जो (कारणपरमात्मा) काया, इन्द्रिय और वाणी को अगोचर है,... वाणी सुनने से भी अगम्य है और उसमें ऐसा कहा कि वाणी सुनने से सुबोध होता है। किस अपेक्षा से कथन है? आहाहा! **काया, इन्द्रिय और वाणी को अगोचर है,... सदा निरावरण होने से...** अन्तर भगवान आत्मा त्रिकाली द्रव्यस्वभाव निरावरण है। त्रिकाली वस्तु को आवरण नहीं है। आहाहा! जिसमें क्षायिकभाव नहीं तो और आवरण-फावरण कहाँ आया? आहाहा!

सदा निरावरण होने से निर्मल स्वभाववाला है... भगवान आत्मा अन्दर तो निर्मल स्वभाववाला है। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ निर्मल आनन्द और निर्मल शुद्ध से भरपूर भगवान अन्दर है। आहाहा! पर्याय पर दृष्टिवाले को पर्याय से उसकी नजर करनी है, उस निधान की, वह नजर न करे और पर्याय पर नजर और पर्याय से बाहर में नजर जाए तो उसमें वह कुछ दिखता नहीं। आहाहा! **निर्मल स्वभाववाला है और...** वह प्रभु अन्दर... यह आवश्यक की बात चलती है। अवश्य करनेयोग्य यह है। बाकी सब करनेयोग्य बाहर का-फाहर का है नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! निश्चय परम आवश्यक है न? अवश्य-जरूरी करने का हो तो यह है। बाकी सब बाहर की बातों में... आहाहा! शून्य लगानेयोग्य है।

टीकाकार ने शास्त्र का लिखान किया और बोले कि भाई! टीका मैंने नहीं की, हों! आहाहा! मैं तो अन्दर ज्ञान में था। वह तो अन्दर बन गयी। मैं तो ज्ञानस्वरूप में गुप्त हूँ। आहाहा! पण्डितजी! टीका हुई न? टीका का अर्थ फिर बाद में किया। शब्द से टीका हो गयी है। मुझसे हुई ही नहीं। मैं तो स्वरूपगुप्त हूँ। मैं तो ज्ञान में गुप्त हूँ। ज्ञान बाहर निकलता नहीं। ज्ञान राग में आता नहीं, ज्ञान वाणी में आता नहीं। ज्ञान गुप्त है। आहाहा! समझ में आया?

समस्त दुरघरूपी वीर शत्रुओं की सेना के ध्वज को लूटनेवाला है... कैसा है प्रभु अन्दर द्रव्यस्वभाव? दुरघ। पुण्य और पाप दोनों दुरघ। अघ—पाप। शुभ और अशुभ दोनों दुरघ पाप है। आहाहा! योगीन्द्रदेव ने तो कहा न! सवेरे आया था, 'पाप को पाप सब कहे, परन्तु अनुभवी पुण्य को पाप कहे।' शुभभाव विकल्प है, वह पाप है। आहाहा! कैसा है

प्रभु अन्दर ? दुरघ—अघ अर्थात् पुण्य और पापरूपी वीर, महा वीर अनादि से जीतते हैं। उन शत्रुओं की सेना की ध्वजा को लूटनेवाला है। आहाहा! चैतन्यमूर्ति अन्दर भगवान आत्मा शुभ और अशुभ के समूह को लूटनेवाला है। करनेवाला और नाश करनेवाला वह नहीं है। करनेवाला भी नहीं और नाश करनेवाला भी नहीं। आहाहा! ऐसी बात।

उसे जो **ध्याता है,...** ऐसे आत्मा को जो ध्यान में लेकर... आहाहा! उसका जो ध्यान करता है, ऐसा आत्मा जो दुरघ—पुण्य और पाप को लूटनेवाला, चार भावरहित ऐसा जो भगवान आत्मा को जो ध्याता है, **उसी को (-उस श्रमण को ही) आत्मवश कहा गया है।** उसे आवश्यक-अवश्य क्रिया उसने की है। उसे आत्मवश कहा जाता है। आहाहा! यहाँ तो अभी बाहर की क्रिया कुछ... कपड़े पहनना, कपड़े धोना, उसे और यह करना, ऐसा आता है। निशिथ में, निशिथ सूत्र है न ? उसमें। मुनि को इतने कपड़े होते हैं और वह फिर धोना, रंगना नहीं। रंगना नहीं। कपड़ा पानी से धोना। अरे! यह वाणी भगवान की नहीं है, यह वाणी भगवान की नहीं है। आहाहा! वस्त्र का टुकड़ा भी रखे और उसे रंगे तथा पहने, उसे मुनि माने, वह समकिती नहीं है। आहाहा! मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु चार भाव से रहित, उसका जो ध्यान करता है, वह आत्मवश है। आहाहा! उसे आत्मवश (कहते हैं)। आत्मा चार भावरहित, पुण्य-पाप का लूटनेवाला ऐसा जो द्रव्यस्वभाव, उसके वश हुआ, वह आत्मवश है, वह आत्मा के आधीन है। आहाहा! ऐसी बात। अनजाने व्यक्ति को तो लगता है कि यह क्या है! यह कैसी ऐसी बात! पूरे दिन हम यह सब करते हैं और... आहाहा!

आत्मवश कहा गया है। उस अभेद-अनुपचार... आहाहा! **अभेद-अनुपचार रत्नत्रयात्मक श्रमण को...** उस साधु को क्या है ? अभेद-अनुपचार-रत्नत्रय। अभेद-अनुपचार-रत्नत्रय अर्थात् ? कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अभेद है। वह आत्मा के साथ अभेद है। अभेद अनुपचार है। तीन नहीं, तीनों एक है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों आत्मा के साथ अभेद हैं, इसलिए अभेद-अनुपचार रत्नत्रयात्मक, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहने में आता है। आहाहा! उसे रत्नत्रय कहने में आता है।

ऐसे **श्रमण को समस्त बाह्यक्रियाकाण्ड-आडम्बर के...** आहाहा! बाह्य क्रियाकाण्ड... आहाहा! उसका जो आडम्बर। उसके **विविध विकल्पों के महा कोलाहल**

से... आहाहा! बाह्य पदार्थ के लक्ष्य से उत्पन्न होनेवाले कोलाहल विकल्प। आहाहा! उनके **महा कोलाहल से प्रतिपक्ष...** ऐसे विकल्प से, राग से विरुद्ध। पर की ओर के झुकाववाले विकल्प से पराधीन नहीं। उससे विरुद्ध है। आहाहा! उसे वह विकल्प नहीं होते। आहाहा! **महा-आनन्दानन्द... परम आवश्यक कर्म निश्चयधर्मध्यान तथा निश्चयशुक्लध्यानस्वरूप है—कि जो ध्यान महा आनन्द-आनन्द के देनेवाले हैं। यह महा आनन्द-आनन्द विकल्पों के महा कोलाहल से विरुद्ध हैं।** आहाहा! अतीन्द्रिय जो आनन्द। महा आनन्द का आनन्द अर्थात् त्रिकाली। महा आनन्द का आनन्द... आहाहा!

बाह्यक्रियाकाण्ड-आडम्बर के विविध विकल्पों के महा कोलाहल से प्रतिपक्ष महा-आनन्दानन्दप्रद निश्चयधर्मध्यान... महा आनन्द आनन्दप्रद—देनेवाला त्रिकाली आनन्द आनन्द को देनेवाला। अनुभव में लेनेवाला, अतीन्द्रिय आनन्द अनुभव में लेनेवाला, वह निश्चयधर्मध्यान। इसका नाम सच्चा धर्मध्यान कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? **निश्चयधर्मध्यान तथा निश्चयशुक्लध्यानस्वरूप परमावश्यक-कर्म है।** आहाहा! यहाँ तो पूरे दिन बाहर के क्रियाकाण्ड में रुके और कोलाहल विकल्पों का और उसमें वापस माने धर्म। आहाहा! कि हम धर्म करते हैं। आहाहा! यह तो कहते हैं कि वह निश्चय महा आनन्द आनन्द, कोलाहल से रहित, महा आनन्द आनन्द। महा आनन्द का आनन्द देनेवाला। भगवान आनन्द आनन्दस्वरूप, उसे पर्याय में देनेवाला, निश्चयधर्मध्यान और शुक्लध्यान उसे कहते हैं। आहाहा! जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे, उसे धर्मध्यान कहते हैं। आहाहा! बहुत कठिन काम।

अतीन्द्रिय आनन्द जो महा आनन्द-आनन्द है, वह पर्याय में उसका आनन्द आवे, उसे धर्मध्यान और शुक्लध्यान कहते हैं। आहाहा! नियमसार, समयसार से भी बहुत कितना ही चढ़ गया है। आहाहा! शीतलप्रसाद ने लिखा है। आहाहा! अत्यन्त निज स्वरूप अखण्डानन्द कारणपरमात्मा। परमाणु को कारणपरमाणु कहा है और आत्मा कारणपरमात्मा, यह शब्द यहाँ है, अन्यत्र नहीं। परमाणु और कारणपरमाणु अन्यत्र नहीं है। नियमसार में है। अभी कारणपरमात्मा और कारणसमयसार, यह समयसार की टीका में है। आहाहा!

उसे यहाँ निश्चयधर्मध्यान और निश्चयशुक्लध्यानस्वरूप परमावश्यक। यह उसे परमावश्यक-अवश्य का उसने किया। आवश्यक था, उसे किया। आत्मा में आनन्द

लिया, वह उसने जरूर किया। आहाहा! कहो, ऐसी बात है। अभी यह व्यवहार से होता है... व्यवहार से होता है... इस बात में शून्य पड़ते हैं। व्यवहार करते-करते होगा। व्यवहार साधन है, व्यवहार साधन है। आहाहा! जयसेनाचार्य की टीका में लिखा है। व्यवहार साधन है, निश्चय साध्य है। लो! यह तो निमित्त का ज्ञान कराया। आहाहा! यह बात झूठी और यह बात सत्य, ऐसे दो होंगे? स्वयं समयसार कहता है कि भूतार्थ त्रिकाली आनन्द का स्वाद ले, उसे समकित कहते हैं। भूतार्थ त्रिकाली वस्तु। जिसमें चार भाव भी नहीं। आहाहा! भले उसका आनन्द आवे, वह उपशमभाव, क्षयोपशमभाव, क्षायिकभाव है, परन्तु वस्तु है, वह उनसे रहित है। उनसे रहित है, उसका ध्यान करने से आनन्द आवे, उसमें उपशमभाव, क्षयोपशमभाव क्षायिक आवे। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसा उपदेश! उसमें कहा है। उसमें कहा न! तत्त्व में प्रवेश कर जा, तत्त्व में गहरा उतर जा, उसमें आता है। पहले है कहीं। है न? तत्त्व में प्रवेश कर। ऐसा आता है। तत्त्व में गहरा उतर जा।

मुमुक्षु : १७ वाँ कलश।

पूज्य गुरुदेवश्री : कितना? १७ वाँ कलश। २७ पृष्ठ। है? क्या है? **शीघ्र चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व में प्रविष्ट हो जाता है—गहरा उतर जाता है।** आहाहा! यह २६ वें पृष्ठ से शुरु होता है। नीचे अन्तिम लाइन। २६वें पृष्ठ पर अन्तिम लाइन। है? **शीघ्र चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व में प्रविष्ट हो जाता है...** तत्त्व में प्रवेश कर जाता है। आहाहा! एक ओर कहते हैं कि तत्त्व को पर्याय स्पर्श नहीं करती। आहाहा! **प्रविष्ट हो जाता है—गहरा उतर जाता है।** तत्त्व में गहरा, पर्याय में न रहकर ऐसे गहरा उतर जाता है। उसके पाताल में जाता है। आहाहा! पर्याय के पाताल में गहरा जाता है। आहाहा! है? **तत्त्व में गहरा उतर जाता है।**

मुमुक्षु : २६-२७ पृष्ठ।

पूज्य गुरुदेवश्री : २६-२७ पृष्ठ है। २६वें पृष्ठ की अन्तिम आखिरी लाइन। अन्तिम।

शीघ्र चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व... अन्तिम और २७ में पहली। **गहरा उतर जाता है।** और प्रवेश कर जाता है। आहाहा! तत्त्व भगवान आत्मा में प्रवेश कर जाता है, गहरा

उतर जाता है। पर्याय का लक्ष्य न रखकर वहाँ जाता है, ऐसा कहते हैं। पर्याय का-चार भाव का लक्ष्य न रखकर गहरा अर्थात् द्रव्य में जाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा के सन्मुख हो जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर में जा। आत्मा चार भावरहित तत्त्व है, वहाँ जा। आहाहा!

मुमुक्षु : परमपारिणामिकभाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परमपारिणामिक। उसमें प्रवेश कर जा, उसमें गहरा उतर जा। गहरा उतर जा। आहा! पाताल-पाताल है। पर्याय का पाताल है। द्रव्य, वह पर्याय का पाताल है। पर्याय को गहरे ले जा, प्रवेश करके गहरे-गहरे ले जा। आहाहा! अरेरे! यह बात थी नहीं। बाहर आयी और विरोध हो पड़ा। किसी को धारणा में भी नहीं थी। सुनी नहीं थी। आहाहा!

निश्चयधर्मध्यान तथा निश्चयशुक्लध्यानस्वरूप परमावश्यक-कर्म है। लो! यह निश्चय कार्य, अवश्य कार्य तो यह है। आवश्यक। अवश्य करनेयोग्य। यह धर्मध्यान और शुक्लध्यान जो आनन्द का आनन्द देनेवाला है, वह करनेयोग्य है। आहाहा! लोगों को कहाँ जाना? पूरे दिन प्रवृत्ति... प्रवृत्ति... प्रवृत्ति... अब उसमें... आहाहा! साधु होवे तो भी प्रवृत्ति। आहाहा! लेखक होवे तो पूरे दिन प्रवृत्ति। विकल्प... विकल्प... विकल्प... विकल्प... पूरे दिन विकल्प सब। अब यहाँ कहते हैं कि बापू! आहाहा! विकल्प का तो पार है परन्तु चार भाव से पार है। क्षायिक और उपशमभाव से भी पार है। आहाहा!

श्लोक-२४७

[अब इस १४६ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज आठ श्लोक कहते हैं:—]

(पृथ्वी)

जयत्यय-मुदार-धीः स्व-वश-योगि-वृन्दारकः,
प्रनष्ट-भव-कारणः प्रहत-पूर्व-कर्मावलिः।

स्फुटोत्कटविवेकतः स्फुटितशुद्धबोधात्मिकां,
सदाशिवमयां मुदा व्रजति सर्वथा निर्वृतिम् ।।२४७।।

(वीरछन्द)

जिसकी मति उदार है, जिसने भव कारण को नष्ट किया।
पूर्व कर्म को नाश मुक्ति को भी प्रमोद से प्राप्त किया॥
शुद्ध बोधमय और सदाशिवमय, विवेक द्वारा उत्पन्न।
मुक्ति प्राप्त वह स्ववश श्रेष्ठ मुनि सदा निरन्तर है जयवन्त॥२४७॥

[श्लोकार्थः] उदार जिसकी बुद्धि है, भव का कारण जिसने नष्ट किया है, पूर्व कर्मावलि का जिसने हनन कर दिया है और स्पष्ट उत्कट विवेक द्वारा प्रगट-शुद्धबोधस्वरूप सदाशिवमय सम्पूर्ण मुक्ति को जो प्रमोद से प्राप्त करता है, ऐसा वह स्ववश मुनिश्रेष्ठ जयवन्त है॥२४७॥

श्लोक -२४७ पर प्रवचन

अब इस १४६ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज आठ श्लोक कहते हैं:— आठ श्लोक! देखो! आहाहा!

जयत्यय-मुदार-धीः स्व-वश-योगि-वृन्दारकः,
प्रनष्ट-भव-कारणः प्रहत-पूर्व-कर्मावलिः।
स्फुटोत्कटविवेकतः स्फुटितशुद्धबोधात्मिकां,
सदाशिवमयां मुदा व्रजति सर्वथा निर्वृतिम् ।।२४७।।

श्लोकार्थः... आहाहा! **उदार जिसकी बुद्धि है,...** आहाहा! जो विद्यमान वस्तु पर्याय और राग को देखता है, तथापि **उदार जिसकी बुद्धि है,...** उसे छोड़कर अन्दर जाता है। आहाहा! **उदार जिसकी बुद्धि है,...** आहाहा! बाह्य की कोई कीमत उसे नहीं लगती। अन्तर की चीज़ की जिसे कीमत लगती है, वह उदार बुद्धि है, वह उदार बुद्धि है अर्थात्? पर्याय में आता नहीं, तथापि वहाँ देखने में पर्याय में आवे। महा उदार बुद्धि, जिसे अनन्त पारिणामिकभाव अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति ऐसी जिसकी अन्तर में

निर्विकल्प में प्रतीति आयी, वह उदार बुद्धिवाला है। आहाहा! वह उदार बुद्धिवाला है। आत्मा के अतिरिक्त परवस्तु नहीं स्वीकार करता, राग को नहीं स्वीकार करता, पर्याय को नहीं स्वीकार करता, क्षायिक को नहीं स्वीकार करता, (वह) उदार बुद्धि है। महात्रिकाली वस्तु को स्वीकार करता हुआ उदार बुद्धिवाला है। आहाहा! समझ में आया?

भव का कारण जिसने नष्ट किया है,... आहाहा! भव का कारण मिथ्या भ्रमणा... आहाहा! जिसने नाश किया है। आहाहा! जिसे अन्तर में उतरना है, जिसे बाहर प्रसिद्ध नहीं होना। आहाहा! बाहर प्रसिद्ध होना है, वह बहिरात्मा है। आहाहा! ऐसा कहते हैं। देखो! **उदार जिसकी बुद्धि है, भव का कारण जिसने नष्ट किया है,...** बाहर के कारण में जिसे रुकना है, वह तो भव है। आहाहा! **भव का कारण जिसने नष्ट किया है, पूर्व कर्मावलि का जिसने हनन कर दिया है...** आहाहा! वर्तमान में है नहीं परन्तु पूर्व में जो है, उसे हनन कर दिया है। आहाहा! राग की धारा पूर्व की पुण्य की धारा भी जिसने नष्ट कर दी है। आहाहा! इसमें कहीं जवाहरात में कुछ नहीं आता। भाई बातचीत करने बैठें, वहाँ यह आता है? मधु और शान्तिभाई इकट्ठे होकर लगावे वह पैसे की। यह तो सबके लिये है न! जिसे जो हो, वहाँ रुकता है। आहाहा! आहाहा!

भव का कारण जिसने नष्ट किया है,... आहाहा! भव का कारण तो राग, शुभराग है। आहाहा! शुभराग, वह संसार है। उसका भी जिसने नाश किया है। आहाहा! **पूर्व कर्मावलि का जिसने हनन कर दिया है और स्पष्ट उत्कट विवेक द्वारा...** क्या कहते हैं? प्रत्यक्ष उत्कृष्ट विवेक द्वारा। बिल्कुल राग और पर्याय से भिन्न अन्दर प्रत्यक्ष, स्वरूप का प्रत्यक्ष वेदन करना। आहाहा! **स्पष्ट उत्कट विवेक द्वारा...** प्रकष्ट उत्कट विवेक द्वारा। उत्कृष्ट में उत्कृष्ट भेदज्ञान द्वारा। कि जिसे कुछ क्षायिकभाव का भी आश्रय नहीं। आहाहा!

ऐसे **उत्कट विवेक (भेदविज्ञान) द्वारा प्रगट-शुद्धबोधस्वरूप...** प्रगट शुद्धबोधस्वरूप अन्दर है। अन्दर प्रगट है। आहाहा! **प्रगट-शुद्धबोधस्वरूप सदाशिवमय...** सदा कल्याणमय वस्तु है। आहाहा! सदा कल्याणमय, कल्याणमय वस्तु है। आहाहा! **सम्पूर्ण मुक्ति को जो प्रमोद से प्राप्त करता है,...** आहाहा! जो सम्पूर्ण सदाशिवमय, सम्पूर्ण मुक्ति को जो प्रमोद से—आनन्द से प्राप्त करता है। आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... करते-करते आनन्द से प्राप्त करता है। **ऐसा वह स्ववश मुनिश्रेष्ठ जयवन्त है।** वर्तते हैं,

कहते हैं। स्वयं मुनि है न? स्वयं मुनि है, जयवन्त वर्तते हैं। आहाहा!

प्रमोद से प्राप्त करता है, ऐसा वह स्ववश मुनि... आहाहा! **श्रेष्ठ जयवन्त (वर्तता) है।** जयवन्त है। आहाहा! यह उसका स्व आवश्यक-आवश्यक का काम उसने किया। जो काम करने का था, वह उसने किया। वह मुनि सर्वोत्कृष्ट है। जिसे मुक्ति लेना है, इसके सिवाय दूसरा कुछ नहीं। आहाहा! बीच में कहीं भी अटकने का जिसे नहीं है, ऐसा जीव... आहाहा!

ऐसा वह स्ववश मुनिश्रेष्ठ जयवन्त है। है, कहते हैं। उस समय स्वयं मुनि है न? आहाहा! यह २४७ (श्लोक पूरा) हुआ।

श्लोक-२४८

(अनुष्टुप्)

प्रध्वस्तपञ्चबाणस्य पञ्चाचाराञ्चिताकृतेः।
अवञ्चक-गुरोर्वाक्यं कारणं मुक्ति-सम्पदः।।२४८।।

(वीरछन्द)

कामदेव के नाशक पञ्चाचार, सुशोभित आकृतिवान।
अहो! अवञ्चक गुरु की वाणी मुक्ति सम्पदा का कारण॥२४८॥

[श्लोकार्थः] कामदेव का जिन्होंने नाश किया है और (ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप-वीर्यात्मक) पंचाचार से सुशोभित जिनकी आकृति है—ऐसे अवंचक (मायाचार रहित) गुरु का वाक्य मुक्तिसम्पदा का कारण है॥२४८॥

श्लोक - २४८ पर प्रवचन

२४८ (श्लोक)

प्रध्वस्तपञ्चबाणस्य पञ्चाचाराञ्चिताकृतेः।
अवञ्चक-गुरोर्वाक्यं कारणं मुक्ति-सम्पदः।।२४८।।

श्लोकार्थः आहाहा! **कामदेव का जिन्होंने नाश किया है...** पाँच इन्द्रियों की ओर की विषय की वासना का जिन्होंने नाश किया है। **और (ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप-वीर्यात्मक) पंचाचार से सुशोभित...** हैं। आहाहा! पाँच विषय की वासना का नाश किया है और पाँच—ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप-वीर्य—ऐसे पंचाचार से सुशोभित हैं। पाँच का नाश किया है और पाँच से सुशोभित हैं। आहाहा! भाई! यह बाहर के किसी साधन से मिले, ऐसा नहीं है। ऐसी चीज़ है। लोगों को कठिन लगती है परन्तु यह सब साधन? यात्रा करना, यह अमुक करना, शास्त्र बनाना, उपदेश दूसरे को देना—सब व्यर्थ? आहाहा! यह सब क्रिया पर की है। यह आत्मा की क्रिया नहीं है। आहाहा!

पंचाचार से सुशोभित जिनकी आकृति है— अर्थात् जिनका स्वरूप है। पंचाचार—ज्ञान-दर्शन-चारित्र-आनन्द आदि से सुशोभित जिनका स्वरूप है। **ऐसे अवंचक (मायाचार रहित)...** आहाहा! **ऐसे अवंचक गुरु का वाक्य मुक्तिसम्पदा का कारण है।** एक ओर इनकार करते हैं कि वाणी कारण नहीं है और यहाँ निमित्तकारण बताते हैं। व्यवहार है न? व्यवहार नहीं है, ऐसा नहीं है। आदरणीय नहीं है। व्यवहार है अवश्य न! आहाहा! कहते हैं, ऐसे जो अवंचक—ठग नहीं, मायाचार नहीं। आहाहा! जिसमें अवंचक—ठगपना जरा भी नहीं। मायाचाररहित है। ऐसे **गुरु का वाक्य मुक्तिसम्पदा का कारण है।** वाक्य, देखो यहाँ! एक ओर कहते हैं कि क्षायिकभाव आत्मा में नहीं है तथा एक ओर कहते हैं कि गुरु का वाक्य मुक्ति सम्पदा का कारण है। कहने का हेतु दूसरा है। गुरु उसे कहते हैं कि जो मुक्ति में चार भावरहित तत्त्व का आश्रय करने की बात करे, उसे गुरु कहते हैं। ऐसा बताते हैं। आहाहा! समझ में आया? गुरु का वाक्य ऐसा है। वाक्य ऐसा है कि चार भावरहित प्रभु परमपारिणामिक सहजात्मस्वरूप भगवान... आहाहा! उसका आश्रय का वाक्य उनका होता है, उन्हें गुरु कहते हैं। आहाहा! गजब बात की है।

ऐसे अवंचक (मायाचार रहित) गुरु का वाक्य... आहाहा! घड़ीक में ऐसा भी कहे, इससे होता है और घड़ीक में व्यवहार से होता है, घड़ीक में निमित्त से होता है। आहाहा! ऐसे गुरु का वाक्य... आहाहा! मुक्ति सम्पदा का कारण नहीं है, वह तो बन्ध का कारण है। आहाहा! ऐसा श्लोक और ऐसी बात! सभा में कितने वर्ष से बाहर नहीं थी, वह बाहर आयी। आहाहा!

ऐसे अवंचक (मायाचार रहित) गुरु का वाक्य... कहने का आशय ऐसा है कि जिन्होंने कामदेव का नाश किया है, जिन्हें पाँच आचार शोभित है-ऐसा जिनका स्वरूप है, वे स्वयं यथार्थ स्वरूप कहेंगे। त्रिकाली द्रव्य का आशय लेने को वे कहेंगे। आहाहा! क्योंकि चारों अनुयोगों का सागर वीतरागता है-वीतराग पर्याय। उस वीतराग पर्याय का आधार आत्मा है। इन चारों ही अनुयोगों का सार द्रव्य का आश्रय है। वे गुरु द्रव्य का आश्रय कहते हैं, इसलिए मुक्तिसम्पदा का कारण है। आहाहा! ऐसी बात है। यह तो गुजराती चलती है।

ऐसे अवंचक... आहाहा! स्वयं भी साधन कर रहे हैं। आहाहा! अन्तर के और उनके वाक्य में भी अन्तर त्रिकाली गुरु भगवान आत्मा का ही आश्रय लेने की बात करते हैं। वही वाक्य मुक्तिसम्पदा का कारण है। जिनकी उपदेश में राग से, निमित्त से, और इससे, उससे लाभ हो, (यह बात आवे), वे गुरु नहीं हैं और वह गुरु का वाक्य नहीं है और वह मुक्ति का कारण भी नहीं है। आहाहा! ऐसा है। बात करते हुए बहुत करते हैं। आहाहा!

गुरु का वाक्य मुक्तिसम्पदा का कारण है। कहीं वचन कारण है? एक तो कहा वाणी / वचन और मन से तो भिन्न है। चार भाव से तो भिन्न है परन्तु यह उपदेशक गुरु ऐसे मिले कि ये चार भाव से रहित आत्मा का आश्रय करने की बात करते हैं। इसलिए उस वाक्य में कहने का आशय स्वद्रव्य का आश्रय करके आवश्यक होता है, वह वास्तविक आवश्यक है। आवश्यक चलता है न? आहाहा! निश्चय आवश्यक उसे कहते हैं कि जो अकेले आत्मा का अवलम्बन कर वीतरागी निर्मल पर्याय प्रगट करे, ऐसा जो वाक्य है, वह गुरु का वाक्य मुक्ति सम्पदा का कारण है और वे ही गुरु यही कहते हैं। गुरु तुझे राग से लाभ होगा और व्यवहार से निश्चय होगा, यह बात नहीं करते। यह बात करे, वह गुरु नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बात है।

नियमसार। आहाहा! यह नियम है, यह नियम है। नियम है अर्थात् यह सार अर्थात् कि वह तो रागरहित है परन्तु नियम, यह नियम है कि गुरु के वाक्य में द्रव्य का आश्रय लेने का ही आता है। आहाहा! अकेला चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ चार भावरहित है, उसके आश्रय से मुक्ति होती है, ऐसा कहे, वह गुरु का वाक्य है। वह सिद्धान्त का वाक्य है। बाकी सिद्धान्त का वाक्य नहीं। ऐसा इसमें आया या नहीं? आहाहा! २४८ (श्लोक पूरा) हुआ।

श्लोक-२४९

(अनुष्टुप्)

इत्थं बुद्ध्वा जिनेन्द्रस्य मार्गं निर्वाणकारणम्।
निर्वाण-सम्पदं याति यस्तं वन्दे पुनः पुनः।।२४९।।

(वीरछन्द)

जो निर्वाण दशा का कारण-ऐसे श्री जिनशासन को।
जान, लहें निर्वाण सम्पदा बार बार वन्दन उनको॥२४९॥

[श्लोकार्थः] निर्वाण का कारण ऐसा जो जिनेन्द्र का मार्ग, उसे इस प्रकार जानकर जो निर्वाण सम्पदा को प्राप्त करता है, उसे मैं पुनः पुनः वन्दन करता हूँ॥२४९॥

श्लोक - २४९ पर प्रवचन

२४९ (श्लोक)

इत्थं बुद्ध्वा जिनेन्द्रस्य मार्गं निर्वाणकारणम्।
निर्वाण-सम्पदं याति यस्तं वन्दे पुनः पुनः।।२४९।।

श्लोकार्थ : आहाहा! **निर्वाण का कारण ऐसा जो जिनेन्द्र का मार्ग...** आहाहा! इसके अतिरिक्त—जिनेन्द्र मार्ग के अतिरिक्त कोई मार्ग है ही नहीं। क्योंकि अनन्त परद्रव्य, राग और पुण्य-पाप के भाव, चार प्रकार की पर्याय और पर्यायरहित द्रव्य—ऐसी (बात) जिनेन्द्र के अतिरिक्त कहीं नहीं है। आहाहा! जिनेन्द्र मार्ग के अतिरिक्त यह बात कहीं नहीं है। आहाहा! इसलिए **ऐसा जो जिनेन्द्र का मार्ग उसे इस प्रकार जानकर...** इस प्रकार जानकर। जो कहा, उस प्रकार जानकर। **जो निर्वाण सम्पदा को प्राप्त करता है,...** जो निर्वाण सम्पदा को प्राप्त करता है। आहाहा! अरे! पंचम काल के मुनि हैं। पंचम काल में शिष्य निर्वाण को पाता है! परन्तु अब सुन न! वह एक भव में और उस भव में पाता है। निर्वाण को इस मार्ग से ही प्राप्त करेगा। आहाहा! निर्वाण को प्राप्त करता है।

उसे मैं पुनः पुनः वन्दन करता हूँ। आहाहा! मेरा वन्दन बारम्बार उसके लिये है। आहाहा! सवेरे-शाम प्रतिक्रमण करे, उसमें गुरु का स्मरण करे, उसमें वन्दन उसे (करता है) जो जिनेन्द्र का मार्ग द्रव्य के आश्रय से, विकाररहित निर्विकार उत्पन्न होता है, चार भावरहित, उस मार्ग की बात करे, वे मुनि वन्दनीय है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)